अथर्ववेद में अध्यात्मवाद की महिमाः एक अध्ययन

श्याम सुन्दर
शोधछात्र, द्रव्यगुण विभाग
आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, बी0 एच0 यू0, वाराणसी।

संक्षेपः अथर्ववेद में वर्णित अध्यात्मिक तत्व आत्मा तथा परमात्मा विषयक ज्ञान का संक्षिप्त विवेचन वर्णित किया गया है।

कुन्जीः अलौकिक, अध्यात्मवाद, अस्तित्वहीन, जिज्ञासा, विपरिणमते, विनश्यति, प्रकाशमान्, परमात्मा, सर्वनियन्ता, चरमोत्कर्ष, अभ्यान्तर, आच्छादित, समन्वय, भोक्ता, अर्वाचीन आदि।

प्रस्तावनाः

सम्पूर्ण जगत् में जिज्ञासा मानव की विशिष्ट प्रवृत्ति मानी जाती है। मानव हमेशा किसी न किसी कार्य के लिए जिज्ञासु रहता है। सम्भवतः इसी कारणवश प्रत्येक व्यक्ति जन्म के पश्चात्–जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तथ्यों का सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु रहता है। तत्पश्चात् इस सन्दर्भ में डॉ0 राधाकृष्णन् जी का विचार है कि यह सब भरतीय मस्तिष्क की प्रबल बौद्धिकता का प्रमाण है, जो मानवीय क्रियाकलाप के समक्ष पक्षों के अभ्यान्तर सत्य एवं नियमों को जानने एवं समझने के लिए प्रयत्नशील है। अतः इसलिए निःसंकोच कहा जा सकता है कि मानव में जानने की इच्छा जिज्ञासा एवं रहस्योद्घाटन करने वाली इस प्रकार मूल प्रवृत्ति ही अध्यात्मवाद की जननी है। इसी प्रकार की जिज्ञासा सोचने–समझने के लिए सायद बाध्य किया होगा एवं उसके द्वारा इस प्रकार के विषय में जो भी संस्तुति या विचार अथवा निष्कर्ष स्वरूप प्राप्त हुए होंगे वही संसार में अध्यात्मवाद के नाम से अविहित हुए।

मानव में जब धीरे–धीरे ज्ञान का विकास हुआ तब वह गगनचुम्बी पर्वत श्रेणियों तथा अथाह जलराशि का प्रत यक्ष दर्शन किया एवं अनेक रूप रंगों के पशु–पक्षियों का कलरव सुना तथा अनेक प्रकार के फल–पुष्पों के गन्ध का अनुभव किया तब उसने एक अगोचर अदृश्य शक्ति को व्यवहार में शक्तिमान्, सर्वनियंता, सृष्टिकर्ता, ब्रह्म, परमात्मा आदि विभिन्न नामों से अविहित किया जाता है या जाना जाता है। परमपिता परमेश्वर की सत्ता स्वीकारने के बाद मानव को अमरत्व का आभास तब होता है जब वह उसके गतिशील काया को अचानक ही निष्क्रिय कर देता है। समस्त व्यक्ति यह मानने को लाचार हो जाता है कि अवश्य ही शरीर के अभ्यान्तर एक ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्व है जिसके विद्यमान रहने से प्राणी के शरीर का महत्त्व है एवं वह प्राणी गतिमान रहता है तथा इसके (आत्मा) चले जाने से मिथ्या (व्यर्थ) एवं निष्क्रिय हो जाता है। इसी तत्त्व को आत्मा कहा जाता है।

विषयवस्तु :

इस नश्वर संसार में आत्मा क्या है, कैसा है, उनकी सत्ता क्या है, यह शरीर से अलग कैसे होता है दिखाई भी नहीं पड़ता परन्तु जब यह किसी भी प्राणी के शरीर से अलग हो जाता है तो यह अस्तित्वहीन हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि कहीं न कहीं इनकी सत्ता है। तभी तो जीवित प्राणी निर्मूल हो होता है, और इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। रही बात परमात्मा की तो एक ऐसी शक्ति जिससे यह समस्त कार्य सम्पादित होता है तो कहीं न कहीं मुझे ऐसी प्रतीति होती की ईश्वर की सत्ता कहीं न कहीं पर विद्यमान है। यही आत्मा तथा परमात्मा का विवेचन ही इस शोध प्रपत्र का मूल एवं विषयवस्तु है। आत्मा एवं परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान (प्रज्ञा) को ही आध्यात्मिक ज्ञान ''किंवा अध्यात्मवाद ज्ञान'' कहा जाता है। तत्पश्चात् अध्यात्मवाद का मुख्य कारण भी आत्मा एवं परमात्मा से सम्बन्धित कठिन से कठिन गुत्थियों एवं समस्याओं को सुलझाना है। व्यक्ति अपने जीवन काल में आखिरी (अन्तिम) एवं चरमोत्कर्ष की लक्ष्य प्राप्ति करने के लिए ही अध्यात्मवाद का अवलम्ब धारण करता है। (अथवा सहारा लेता है) जिसके द्वारा मनुष्य को परम लक्ष्य एवं अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। मूल रूप से कहा जा सकता है कि आत्मा सम्बन्धी कठिन प्रश्नों की सरल एवं सुबोध कुन्जी अध्यात्मवाद है जिसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय आत्मा, परमात्मा, जीव, एवं जगत्‌ादि है। वेदों में सबसे अर्वाचीन (नवीन) वेद अथर्ववेद जो कि ब्रह्मवेद के नाम से भी जाना जाता है। उसमें भी पर्याप्त अध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन किया गया है। आत्मा, परमात्मा एवं जगत् के आपसी सम्बन्धों में पर्याप्त प्रकाश प्राप्त होता है। इस प्रकार अथर्ववेद के अवलम्ब पर आत्मा, परमात्मा एवं जगत् पर संक्षिप्त प्रकाश प्रज्वलित किया गया है। जो इस प्रकार है–

आत्मा :

अथर्ववेद में आत्मा को अमर माना गया है। आत्मा का सम्बन्ध अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते एवं विनश्यति इन छः प्रकार के विकारों के मिलने से प्राप्त होता है। यह आत्मा तत्त्व मनुष्य (प्राणिमात्र) के शरीर में अस्थिर रहता है एवं प्राणी मात्र के शरीर को चलाने वाला है। मनुष्य के प्राणों को भी यही आत्मा अपने साथ रखता है, अन्ततोगत्वा शरीर के नष्ट हो जाने पर दूसरे नवीन उत्पन्न हुए शरीर में प्रवेश करते हैं। आत्मा साक्षात् धारक शक्ति होने के कारण ही यह प्राणी मात्र के शरीर में प्रवेश करता है एवं उससे अलग हो जाता है। आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करने की कोई निश्चित अवधि या समय नहीं होतीं यह आत्मा कभी भी एक से दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकती है। इसी परमशक्ति होने के कारण नाशवान् अर्थात् नष्ट होने वाला है। अतः इस प्रकार के विमर्शों से यह निर्णय निकाला जा सकता है कि वर्तमान कालीन समाज में आत्मा के पुनर्जन्म पर लगभग विश्वाश किया जाता था।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्यं आ पस्त्यानाम्।

जीवो मृतस्य चरति स्वाधिभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।।

अपाङ्प्राङेति स्वधया गृभीतोमत्यो मर्त्येना सयोनिः।

ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्।। [1]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने आत्मा को अजर और अमर बताया है। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र को धारण करता है ठीक उसी प्रकार यह आत्मा भी पुराने शरीर को छोड़कर पुनः नये शरीर को धारण करता है या प्राप्त होता है।

वसांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संहाति नवानि देहि।।

(गीता अध्याय 2/22)

अथर्ववेद में यह भी स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यह आत्मा जन्म लेने के लिए माता के उदरभाग में प्रवेश करता हैं। यह आत्मा सदा युवा रहता है कभी बूढ़ा नहीं होता । यह आत्मा पिता के समान शरीर का रक्षक भी माना गया, क्योंकि इस आत्मा के द्वारा ही शरीर त्याग दिए जाने पर शरीर की रक्षा करना असम्भव हो जाता है। अर्थात् शरीर की रक्षा करना सम्भव नहीं है।

अथर्वणं पितरं देवबन्धुं मातुरगर्भं पितुरसु युवानम्।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः।। [2]

अथर्ववेद में आत्मा सम्बन्धित विस्तृत व्याख्या करने के बाद भी कहीं भी ऐसा उल्लेख प्राप्त होता जो कि आत्मा के समानता की तरफ संकेत कर सके। आत्मा में शरीर में बँधे रहने पर भी मन से हलचल करता है एवं इस लिए ऐसा वर्णन हमारे आत्मा की कार्यक्षमता की ओर संकेत करता है।

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।

यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः।। [3]

अथर्ववेद मे आत्मा के विषय में इस प्रकार का सम्बन्ध प्राप्त होता है कि यह आत्मा ही स्त्री–पुरुष, कुमार–कुमारी दोनों प्रकार का है। इस प्रकार यह आत्मा बृद्ध होने पर दण्ड के सहारे चलता है एवं पुनर्जन्म लेने पर चारों ओर से मुख वाला अर्थात् वाणीमय वाला हो जाता है।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।। [4]

आत्मा का ज्ञान सबको नहीं हो पाता। अज्ञानी व्यक्ति आत्मा का ज्ञान (दर्शन) नहीं कर पाता इसके लिए ज्ञानवान् होना आवश्यक है। गति से युक्त इस शरीर को चलाने वाला ही है जबकि आत्मा स्वयं ही अस्थि रहित है परन्तु यह आत्मा अस्थि युक्त शरीर का धारण करता है इस प्रकार का उल्लेख स्वयं अथर्ववेद में मिलता है। इस प्रकार यह आत्मा भारी शरीर का पूर्णरूप से भार वहन करने में सक्षमता को प्राप्त होता है। शरीर का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंस जो शरीर मात्र को जीवित रखता है अथवा जिसके कारण शरीर का एक बहुत बड़ा महत्त्व है वह आत्मा ही है और इसको सत्य की रक्षा करने वाला एवं असत्य का विनाश करने वाला भी बताया गया है।

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वा मित्रावरुणा चिकेत।

गर्भो भारं भरत्या चिरस्या ऋचं पिपर्त्यनृतं नि पाति।। [5]

अथर्ववेद में इन दो तत्वों आत्मा एवं परमात्मा शब्द के लिए ''द्वा सुपर्णा'' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका आशय यह है कि यह दो तत्व आत्मा एवं परमात्मा रूपी पक्षी इस संसार रूपी वृक्ष पर परस्पर भाव से मिलजुलकर रहते हैं। इन दोनों में एक मीठे फलों का भोग करना चाहता है एवं दूसरा विना कुछ भोग किए हुए ही प्रकाशवान् होता हैं इस संसार में फलों का भोग करने वाले पक्षी का नाम ही आत्मा है, क्योंकि इस आत्मा की ही ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है कि वह जगत् का भोग करना चाहता है। दूसरा तत्व परमात्मा है जो पूर्ण है। संसार का भोग किये बिना ही सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है। इससे बात सुस्पष्ट हो जाती है कि परमात्मा में विरोध की भावना न होकर परस्पर समन्वय ही भावना थी। आत्मा एवं परमात्मा को मित्र माना गया है। यही आत्मा जगत् के मीठे फलों का भोक्ता होता है तथा इस आत्मा को ही परमात्मा का ज्ञान होता है। परमात्मा को आत्मा का पिता भी माना जाता है। आत्मा जब तक अपने पिता परमात्मा को पहचानता नहीं तब तक उसे सच्चे सुखों की प्राप्ति नहीं हो पाती है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परि षस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्याद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशोति।। [6]

परमात्मा :

अथर्ववेद में परमात्मा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस परमात्मा को जगत् का आदि कारण, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वश्रेष्ठ, सम्राट् आदि अनेक रूपों में प्रस्तुत किया

गया है। अथर्ववेद में स्पष्ट स्वीकार किया गया है–कि परमात्मा ही जगत् को उत्पन्न करने वाला है, जगत् के सभी प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है। सबसे पहले इस जगत् में परमात्मा का प्राकट्य (जन्म) हुआ। वही परमात्मा मन में एवं गर्भ में भी प्रवेश करता है। इस परमात्मा को प्रारम्भ काल से विद्यमान होने के कारण सनातन शक्ति भी माना जाता है एवं स्पष्ट किया गया है कि इसी परमात्मा से ही सम्पूर्ण जगत् का सृजन हुआ है। यही परमात्मा भूत भविष्य एवं वर्तमान काल के सभी पदार्थों का सृजन करने वाला है। यही परमात्मा जड़ चेतन सभी पदार्थों का रचयिता है। परमात्मा के प्रभाव से ही द्युलोक, पृथ्वीलोक एवं अन्तरिक्ष लोक का विस्तार हुआ है। परमात्मा के शक्ति से सूर्य प्रकाशित होता है। हिम आच्छादित होता है। समुद्र पृथ्वी एवं उपदिशाएँ भी इस परमात्मा के द्वारा ही निर्मित है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि परमात्मा ही सम्पूर्ण जगत् का धारक है।

एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः म उगर्भ अन्तः।

यो भूतं च भव्यं च सर्व यश्चाधितिष्ठाति।। [7]

परमात्मा विषयक विस्तृत व्याख्या के पश्चात् परमात्मा का उच्छिष्ट स्वरूप रोष रहता है, जिसका वर्णन अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के सातवें सूक्त में किया गया है। उच्छिष्ट का शब्दिक अर्थ है–उच्च स्थान में शेष बचा हुआ। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी परमात्मा के इस उच्छिष्ट स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार वहाँ पर उल्लेख मिलता है कि त्रिपाद पुरुष उच्च स्थान में उदित हुआ एवं उसका एक अंस यहां इस विश्व पुनः–पुनः होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि परमात्मा अपने मात्र एक अंस से ही संसार का सृजन करता है एवं उसका शेष अवशिष्ट उर्ध्व भाग में ही स्थित रहता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि परमात्मा का अल्प भाग ही विश्वरूपाकार होता है शेष मूल स्थिति में अवशिष्ट भाग ही उच्छिष्ट है। इसमें रूपात्मक, नामात्मक, कर्मात्मक तथा कालात्मक जगत् आश्रित है। अथर्ववेद में स्पष्ट वर्णित है कि लोक इन्द्र, अग्नि, विश्व धावा, पृथ्वी, समस्त भूतमात्र, जल, समुद्र, चन्द्रमा, वायु, नौ भूमियां, सूर्य, बालू, पत्थर, औषधि, वनस्पतियां, घास, बादल, विद्युतवृष्टि, प्राणियों के इन्द्रियजन्य, व्यापार तथा आकाश, देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा विश्व के कारण भूत दश देव जो यह सभी रूपतामक पदार्थ है इन सबका आश्रय उच्छिष्ट ही है।

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।

नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः।। [8]

निष्कर्ष– आत्मा– परमात्मा को समझने के लिए इसे समझना भी जरूरी है–

तन से भारी साँस है, ऐसे समझ लो खूब।

मूरदा जल में तैरता, जिन्दा जाता डूब।।

¼गोपालदास 'निरज'½

सत्य तो यह है कि प्राणी के शरीर में जब तक सांस है तब तक वह भारी है, वजनीय है, अस्तित्व युक्त है। सांस, आत्मा निकलते ही वह हल्का हो जाता है। अर्थात् आत्मा निकलने के बाद प्राणी नष्ट हो जाता है। परमात्मा जो आत्मा से भिन्न है, जिसकी सत्ता सदैव, निरन्तर प्रकृति के प्रत्येक प्राणी को नया उजाला देता है। जहां समानता है, असमानता नहीं। जहां न्याय है, अन्याय नहीं। जहां सत्य है, असत्य नहीं। जहां पर इन्सानियत है, हैवानियत नहीं। ऐसी अदिव्य शक्ति हीं परमात्मा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1 – अथर्व0 9/10/8,1

2 – अथर्व0 7/2/1

3 – अथर्व0 9/10/15

4 – अथर्व0 10/8/27

5 – अथर्व0 9/10/23

6 – अथर्व0 9/9/20

7 – अथर्व0 10/8/28–1

8 – अथर्व0 11/7/4